रश्मि

श्री महादेवी वर्मा

प्रकाशक
साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग
१९५१

अपनी बात

अपने विषय में कुछ कहना प्रायः बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि अपने दोष देखना अपने आपको अप्रिय लगता है और उनको अनदेखा कर जाना औरों को—

'रश्मि' में मेरी कुछ नई और कुछ पुरानी रचनायें संग्रहीत हैं। इसके विषय में क्या कहूँ ! यह मेरे इतने निकट है कि उसका वास्तविक मूल्य आँकना मेरे लिए सम्भव नहीं; आँखों में देखने की शक्ति होने पर भी उनसे मिलाकर रखी हुई वस्तु कहीं स्पष्ट दिखाई देती है !

हाँ, इतना कहने में मुझे संकोच न होगा कि मैं स्वयं अनित्य होकर भी जिन प्रिय वस्तुओं की नित्यता की कामना करने से नहीं हिचकती यह उन्हीं में से एक है।

जैसे मेरे बिना जाने हुए ही मेरे स्वभाव में अनेक गुण दोष आ गए हैं उसी प्रकार कुछ लिखते रहने की दुर्बलता भी उत्पन्न हो गई है। कब और कैसे—यह तो मैं स्वयं ही नहीं जानती हूँ; केवल इतना कह सकती हूँ कि लिखने में सुख मिलता है, न लिखने से जीवन में एक अभाव सा प्रतीत होता है। समय के अनुसार विचारों में, विचारों के अनुसार रचनाओं में जो परिवर्त्तन आते गए हैं उनके लिए भी मुझे कभी प्रयत्न नहीं करना पड़ा। याद नहीं आता जब मैंने किसी विषयविशेष या 'वाद' विशेष पर सोचकर कुछ लिखा हो।

मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्दचित्र मात्र है जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इस संसार से अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार संसार बसा रखा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिङ्गन में आवद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित संसार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम का—एक उसको विश्व से बांध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।

जड़ चेतन के बिना विकासशून्य है और चेतन जड़ के बिना आकार शून्य। इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी

भाषा में हो चाहे किसी 'वाद' के अन्तर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो चाहे अपार्थिव की और चाहे दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है। कितनी ही भिन्न परिस्थितियों में होने पर भी हम हृदय से एक ही हैं यही कारण है कि दो मनुष्यों के देश, काल, समाज आदि में समुद्र के तटों जैसा अन्तर होने पर भी वे एक दूसरे के हृदयगत भावों को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जीवन की एकता का यह छिपा हुआ सूत्र ही कविता का प्राण है। जिस प्रकार वीणा के तारों के भिन्न भिन्न स्वरों में एक प्रकार की एकता होती है जो उन्हें एक साथ मिलकर चलने की और अपने साम्य से सङ्गीत की सृष्टि करने की क्षमता देती है उसी प्रकार मनुष्य के हृदयों में एकता छिपी हुई है। यदि ऐसा न होता तो विश्व का संगीत ही बेसुरा हो जाता।

फिर भी न जाने क्यों हम लोग अलग अलग छोटे छोटे दायरे बना कर उन्हीं में बैठे बैठे सोचा करते हैं कि दूसरा हमारी पहुँच से बाहर है। एक कवि विश्व का या मानव का बाह्य सौंदर्य देखकर सब कुछ भूल जाता है; सोचता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर अलग एक संगीत की सृष्टि करेगा; दूसरा विश्व की आन्तरिक वेदनाबहुल सुषमा पर मतवाला हो उठता है, समझता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर सब से अलग एक निराले संगीत की सृष्टि कर लेगा; परन्तु वे नहीं सोचते कि उन दोनों के स्वर मिलकर ही विश्व-संगीत की सृष्टि कर रहे हैं।

वर्त्तमान, आकाश से गिरी हुई सम्बन्ध रहित वस्तु न होकर भूतकाल का ही बालक है जिसके जन्म का रहस्य भूतकाल में ही ढूँढ़ा जा सकता है। हमारे छायावाद के जन्म का रहस्य भी ऐसा ही है। मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोड़ने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता है।

छायावाद के जन्म का मूलकारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। उसके जन्म से प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही

लगता है।

इन छायाचित्रों को बनाने के लिए और भी कुशल चितेरों की आवश्यकता होती है, कारण उन चित्रों का आधार छूने या चर्मचक्षु से देखने की वस्तु नहीं। यदि वे मानवहृदय में छिपी हुई एकता के आधार पर उसकी संवेदना का रङ्ग चढ़ा कर न बनाये जायँ तो वे प्रेतछाया के समान लगने लगें या नहीं इसमें मुझे कुछ ही संदेह है।

जो कुछ हो मेरा विश्वास है कि यदि हृदयवाद में हम बाह्य विश्व का अस्तित्व एकदम भूल जायँ तो सम्भव है कि कुछ दिनों बाद हम अपने बाह्य रूप की अभिव्यक्ति के लिए उतने ही आकुल हो उठें जितने पहले हृदय के लिए थे।

छायावाद के भाग्य में क्या है इसका निर्णय समय करेगा जिसकी गति में कोई भी हलकी, तुच्छ वस्तु नहीं ठहर पाती।

छायावाद के अन्तर्गत न जाने कितने वाद हैं। मेरी रचना का कहाँ स्थान है यह मैं नहीं जानती—जहाँ जिसका जी चाहे रखे। कविता लिखने का ध्येय उसे किसी वाद के अन्तर्गत रखना ही तो नहीं है जो मैं चिंता करूँ।

अपने दुःखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुःख के धूपछाहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए भी किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझनेवाली फिलॉसफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

अवश्य ही उस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे

पहिचानने में भूल नहीं कर पाती—

दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सब को बांट कर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलविन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि की मोक्ष है।

मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनाशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बांध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।

अपने भावों का सच्चा शब्दचित्र अङ्कित करने में मुझे प्रायः असफलता ही मिली है, परन्तु मेरा विश्वास है कि असफलता और सफलता की सीढ़ियों द्वारा ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर 'आँसू की माला' ही गूंथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा।

परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है। जिस प्रकार जीवन के उषःकाल में मेरे सुखों का उपहास सा करती हुई विश्व के कण कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार सन्ध्याकाल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दब कर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।

व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुल कर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुल कर जीवन को अमरत्व—

जब उस पूर्ण की सृष्टि होने पर भी मेरा जीवन इतनी त्रुटियों से भरा हुआ और इतना अपूर्ण है तब इस अपूर्ण जीवन की कृति में तो असंख्य त्रुटियां होंगी यह जान कर भी रश्मि को आप सब को समर्पित करने की धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ।

प्रयाग
१४—६—३२

महादेवी वर्मा

सूची

पृष्ठ

रश्मि

रश्मि

चुभते ही तेरा अरुण बान!

बहते कन कन से फूट फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान!

इन कनक-रश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम-सिंधु जाग;
बुद्बुद् से बह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग;

बनती प्रवाल का मृदुल कूल,
जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान!

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गए इन्द्रधनुषी वितान;
दे मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरल प्राण;

धो स्वर्णप्रात में तिमिर-गात,
दुहराते अलि निशि-मूक तान!

सौरभ का फैला केश-जाल,
करतीं समीरपरियाँ विहार;
गीलीकेसर-मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार;

मर्मर का मधुसंगीत छेड़—
देते हैं हिल पल्लव अजान!

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,
उड़ गई नींद-निशि-क्षितिज-पार;
अधखुले दृगों के कंज-कोष—
पर छाया विस्मृति का ख़ुमार;

रंग रहा हृदय ले अश्रु-हास,
यह चतुर चितेरा सुधि-विहान!

सुधि

किस सुधि-वसन्त का सुमन-तीर,
कर गया मुग्ध मानस अधीर ?

वेदना गगन से रजत ओस,
चू चू भरती मन-कंज-कोष,

अलि सी मंडराती विरह-पीर !

मंजरित नवल मृदु देह-डाल,
खिल खिल उठता नव पुलक-जाल

मधु-कन सा छलका नयन-नीर !

अधरों से झरता स्मित-पराग,
प्राणों में गूँजा नेह-राग,

सुख का बहता मलयज समीर !

घुल घुल जाता यह हिम-दुराव,
गा गा उठते चिर मूक भाव,

अलि सिहर सिहर उठता शरीर !

१

शून्यता में निद्रा की बन,
उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन,
पूर्णता कलिका की सुकुमार,
छलक मधु में होती साकार,

हुआ त्यों सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर में अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान,
विश्वप्रतिमा कर दी निर्माण ?

काल सीमा के संगम पर,
मोम सी पीड़ा उज्ज्वल कर !
× × ×
उसे पहनाई अवगुण्ठन,
हास औ' रोदन से बुन बुन !

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात;
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?

शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगण;
बुझा क्यों उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूंक ?

रजत प्याले में निद्रा ढाल,
बांट देती जो रजनी बाल;
उसे कलियों में आंसू घोल,
चुकाना पड़ता किसको मोल ?

पोछती जब हौले से वात,
इधर निशि के आंसू अवदात;
उधर क्यों हंसता दिन का बाल,
अरुणिमा से रंजित कर गाल ?

कली पर अलि का पहला गान;
थिरकता जब बन मृदु मुस्कान,
विफल सपनों के हार पिघल,
ढुलकते क्यों रहते प्रतिपल ?

गुलालों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती संध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्णपराग;

उसे तम की बढ़ एक झकोर
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?

× × ×

रश्मि

अथक सुषमा का स्रजन विनाश,
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

किसी की व्यथासिक्त चितवन,
जगाती कण कण में स्पन्दन;
गूँथ उनकी सांसों के गीत,
कौन रचता विराट संगीत ?

प्रलय बनकर किसका अनुताप,
डुबा जाता उसको चुपचाप ?

आदि में छिप आता अवसान,
अन्त में बनता नव्य विधान;
सूत्र ही है क्या यह संसार,
गुँथे जिसमें सुखदुख जयहार ?

गीत

क्यों इन तारों को उलझाते ?

अनजाने ही प्राणों में क्यों
आ आ कर फिर जाते ?

पल में रागों को झंकृत कर,
फिर विराग का अस्फुट स्वर भर,
मेरी लघु जीवन-वीणा पर
क्या यह अस्फुट गाते ?

लय में मेरा चिर करुणा-धन,
कम्पन में सपनों का स्पन्दन,
गीतों में भर चिर सुख चिर दुख
कण कण में बिखराते !

मेरे शैशव के मधु में घुल,
मेरे यौवन के मद में ढुल,
मेरे आंसू स्मित में हिलमिल
मेरे क्यों न कहाते ?

दुःख

रजतरश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता;
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता!

उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुणाकाव्य वह लिख जाता!

वह उर में आता बन पाहुन,
कहता मन से, 'अब न कृपण बन',
मानस की निधियां लेता गिन,
दृग-द्वारों को खोल विश्वभिक्षुक पर, हँस बरसा आता!

यह जग है विस्मय से निर्मित,
मूक पथिक आते जाते नित,
नहीं प्राण प्राणों से परिचित,
यह उनका संकेत नहीं जिसके बिन विनिमय हो पाता!

रश्मि

मृगमरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता' !

दुख के पद छू बहते झर झर,
कण कण से आंसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता !

अतृप्ति

चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन!

पूर्णता यही भरने की
ढुल, कर देना सूने घन;
सुख की चिरपूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन!

चिर ध्येय यही जलने का
ठंढी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना!

मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर;
रहने दो प्यासी आँखें
भरतीं आँसू के सागर।

रश्मि

तुम मानस में बस जाओ
छिप दुख की अवगुण्ठन से;
मैं तुम्हें ढूँढ़ने के मिस
परिचित हो लूँ कण कण से!

तुम रहो सजल आँखों की
सित असित मुकुरता बन कर:
मैं सब कुछ तुम से देखूँ
तुमको न देख पाऊँ पर!

चिर मिलन-विरह-पुलिनों की
सरिता हो मेरा जीवन;
प्रतिपल होता रहता हो
युग कूलों का आलिङ्गन!

इस अचल क्षितिज-रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के,
पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके!

द्रुत पंखोंवाले मन को
तुम अंतहीन नभ होना;
युग उड़ जावें उड़ते ही
परिचित हो एक न कोना!

तुम अमरप्रतीक्षा हो मैं
पग विरहपथिक का धीमा;
आते जाते मिट जाऊँ
पाऊँ न पंथ की सीमा!

तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन आऊँ;
काटूँ वियोग-पल रोते
संयोग-समय छिप जाऊँ!

आवे बन मधुर मिलन-क्षण
पीड़ा की मधुर कसक सा;
हँस उठे विरह ओठों में—
प्राणों में एक पुलक सा!

पाने में तुमको खोऊँ
खोने में समझूँ पाना;
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना!

गूँथें विषाद के मोती
चाँदी सी स्मित के डोरे;
हों मेरे लक्ष्य-क्षितिज की
आलोक-तिमिर दो छोरें।

जीवन दीप

किन उपकरणों का दीपक,
किसका जलता है तेल?
किसकी वर्त्ति, कौन करता
इसका ज्वाला से मेल?

शून्य काल के पुलिनों पर–
आकर चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरों में
वह रहस्यमय कौन?

कुहरे सा धुंधला भविष्य है,
है अतीत तम घोर
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर?

रश्मि

पावस की निशि में जुगनू का–
ज्यों आलोक-प्रसार,
इस आभा में लगता तम का
और गहन विस्तार !

इन उत्ताल तरङ्गों पर सह–
झंझा के आघात,
जलना ही रहस्य है बुझना–
है नैसर्गिक बात ।

कौन है ?

कुमुद-दल से वेदना के दाग को
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियां,
चौंक उठतीं अनिल के निश्वास छू,
तारिकायें चकित सी, अनजान सी;
× × ×
तब बुला जाता मुझे उस पार जो,
दूर के संगीत सा वह कौन है?

शून्य नभ पर उमड़ जब दुखभार सी
नैश तम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पांति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी;
× × ×
तब चमक जो लोचनों को मूंदता,
तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है?

अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,

तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में,
× × ×
सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है?

जब कपोल-गुलाब पर शिशु-प्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से,
रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे;
× × ×
स्वप्न-शाला में यवनिका डाल तब
जो दृगों को खोलता वह कौन है?

जीवन —

तुहिन के पुलिनों पर छविमान,
किसी मधुदिन की लहर समान;
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान,
वेदना का ज्यों छाया-दान;

विश्व में यह भोला जीवन—
स्वप्न-जागृति का मूक मिलन,
बांध अञ्चल में विस्मृति-धन,
कर रहा किसका अन्वेषण?

धूलि के कण में नभ सी चाह,
बिन्दु में दुख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन में स्वप्न अपार,
एक पल असफलता का भार;

साँस में अनुतापों का दाह,
कल्पना का अविराम प्रवाह;
यही तो हैं इसके लघु प्राण,
शाप वरदानों के सन्धान!

भरे उर में छवि का मधुमास,
दृगों में अश्रु अधर में हास,
ले रहा किसका पावस-प्यार,
विपुल लघु प्राणों में अवतार?

नील नभ का असीम विस्तार,
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल से निर्भर वीचि-विलास,
मन्द म यानिल से उच्छ्वास,

धरा से ले परमाणु उधार,
किया किसने मानव साकार?

दृगों में सोते हैं अज्ञात,
निदाघों के दिन पावस-रात;
सुधा का मधु हाला का राग,
व्यथा के घन अतृप्ति की आग!

छिपे मानस में पवि नवनीत,
निमिप की गति निर्भर के गीत,
अश्रु की उर्म्मि हास का वात,
कुहू का तम माधव का प्रात!

हो गये क्या उर में वपुमान,
क्षुद्रता रज की नभ का मान,
स्वर्ग की छवि रौरव की छाँह,
शीत हिम की बाड़व का दाह?

और—यह विस्मय का संसार,
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि में क्यों खिलकर नादान,
उसी में होता अन्तर्धान?

काल के प्याले में अभिनव,
ढाल जीवन का मधु-आसव,
नाश के हिम अधरों से, मौन,
लगा देता है आकर कौन?

बिखर कर कन कन के लघुप्राण
गुनगुनाते रहते यह तान,
"अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास"!

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग एक समान;
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर।

छिपा कर उर में निकट प्रभात ,
गहनतम होती पिछली रात ;
सघन वारिद अम्बर से छूट ,
सफल होते जल-कण में फूट ।

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार ,
दीप करता आलोक-प्रसार ;
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण ,
बीज करता असंख्य निर्माण ।

सृष्टि का है यह अमिट विधान ,
एक मिटने में सौ वरदान ;
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास ,
विफलता में है पूर्त्ति-विकास !

आह्वान—

फूलों का गीला सौरभ पी
बेसुध सा हो मन्द समीर,
भेद रहे हों नैश तिमिर को
मेघों के बूँदों के तीर;

नीलम-मन्दिर की हीरक—
प्रतिमा सी हो चपला निस्पन्द,
सजल इन्दुमणि से जुगनू
बरसाते हों छबि का मकरन्द;

बुद्बुद् की लड़ियों में गूंथा
फैला श्यामल केश-कलाप,
सेतु बाँधती हो सरिता सुन—
सुन चकवी की मूक विलाप;

तब रहस्यमय चितवन से—
छू चौंका देना मेरे प्राण,
ज्यों असीम सागर करता है
भूले नाविक का आह्वान!

वे दिन—

नव मेघों को रोता था
जब चातक का बालक मन,
इन आंखों में करुणा के
घिर घिर आते थे सावन!

किरणों की देख चुराते
चित्रित पंखों की माया,
पलकें आकुल होती थीं
तितली पर करने छाया!

जब अपनी निश्वासों से
तारे पिघलाती रातें,
गिन गिन धरता था यह मन
उनके आँसू की पाँतें।

जो नव लज्जा जाती भर
नभ में कलियों में लाली,
वह मृदु पुलकों से मेरी
छलकाती जीवन-प्याली।

घिर कर अविरल मेघों से
जब नभमंडल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओं से
मेरा मानस भर आता।

गर्जन के द्रुत तालों पर
चपला का बेसुध नर्तन,
मेरे मन बालशिखी में
संगीत मधुर जाता बन।

किस भांति कहूँ कैसे थे
वे जग से परिचय के दिन,
मिश्री सा घुल जाता था
मन छूते ही आँसू कन।

अपनेपन की छाया तब
देखी न मुकुर-मानस ने,
उसमें प्रतिबिम्बित सबके
सुख दुख लगते थे अपने।

४

तब सीमाहीनों से था
मेरी लघुता का परिचय,
होता रहता था प्रतिपल
स्मित का आँसू का विनिमय।

परिवर्तन-पथ में दोनों
शिशु से करते थे क्रीड़ा;
मन मांग रहा था विस्मय
जग मांग रहा था पीड़ा!

यह दोनों दो ओरें थीं
संसृति की चित्रपटी की,
उस बिन मेरा दुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी।

किसने अनजाने आकर
वह लिया चुरा भोलापन,
उस विस्मृति के सपने से
चौंकाया छूकर जीवन।

जाती नवजीवन बरसा
जो करुणघटा कण-कण में,
निस्पन्द पड़ी सोती वह
अब मन के लघु बंधन में!

स्मित बनकर नाच रहा है
अपना लघु सुख अधरों पर;
अभिनय करता पलकों में
अपना दुख आँसू बनकर।

अपनी लघु निश्वासों में
अपनी साधों की कम्पन;
अपने सीमित मानस में
अपने सपनों का स्पंदन!

मेरा अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरिचित;
हो गया उदधि जीवन का
सिकता-कण में निर्वासित!

स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे सन्ध्या जाती;
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुस्काती।

अस्फुट मर्मर में, अपनी
गति की कलकल उलझाकर,
मेरे अनन्त पथ में नित-
सङ्गीत बिछाते निर्झर।

यह साँसें गिनते गिनते
नभ की पलकें झप जातीं,
मेरे विरक्ति-अञ्चल में
सौरभ समीर भर जाती।

मुख जोह रहे हैं मेरा
पथ में कब से चिर सहचर;
मन रोया ही करता क्यों
अपने एकाकीपन पर?

अपनी कणकण में बिखरी
निधियाँ न कभी पहिचानीं,
मेरा लघु अपनापन है
लघुता की अकथ कहानी।

मैं दिन को ढूँढ रही हूँ
जुगनू की उजियाली में;
मन मांग रहा है मेरा
सिकता हीरक-प्याली में!

आशा

वे मधुदिन जिनकी स्मृतियों की
धुँधली रेखायें खोईं,
चमक उठेंगे इन्द्रधनुष से
मेरे विस्मृति के घन में।

झंझा की पहली नीरवता—
सी नीरव मेरी साधें,
भर देंगी उन्माद प्रलय का
मानस की लघु कम्पन में।

सोते जो असंख्य बुद्बुद् से
बेसुध सुख मेरे सुकुमार,
फूट पड़ेंगे दुखसागर की
सिहरी धीमी स्पन्दन में।

मूक हुआ जो शिशिर-निशा में
मेरे जीवन का संगीत,
मधु-प्रभात में भर देगा वह
अन्तहीन लय कण कण में।

मेरा पता

स्मित तुम्हारी से छलक यह ज्योत्स्ना अम्लान ,
जान कब पाई हुआ उसका कहां निर्माण ?

अचल पलकों में जड़ी सी तारकायें दीन ,
ढूँढती अपना पता विस्मित निमेषविहीन !

गगन जो तेरे विशद अवसाद का आभास ,
पूछता 'किसने दिया यह नीलिमा का न्यास' ?

निठुर क्यों फैला दिया यह उलझनों का जाल ,
आप अपने को जहां सब ढूँढते बेहाल !

काल-सीमा हीन सूने में रहस्यनिधान !
मूर्तिमत् कर वेदना तुमने गढ़े जो प्राण ;

धूलि के कण में उन्हें बन्दी बना अभिराम ,
पूछते हो अब अपरिचित से उन्हीं का नाम !

पूछता क्या दीप है आलोक का आवास ?
सिन्धु को कब खोजने लहरें उड़ीं आकाश !

धड़कनों से पूछता है क्या हृदय पहिचान ?
क्या कभी कलिका रही मकरन्द से अनजान ?

क्या पता देते घनों को वारिबिन्दु असार ?
क्या नहीं दृग जानते निज आँसुओं का भार ?

चाह की मृदु उँगलियों ने छू हृदय के तार ;
जो तुम्हीं में छेड़ दी मैं हूँ वही झङ्कार !

नींद के नभ में तुम्हारे स्वप्न-पावस-काल ,
आंकता जिसको वही मैं इन्द्रधनु हूँ बाल !

तृप्ति-प्याले में तुम्हीं ने साध का मधु घोल ,
है जिसे छलका दिया मैं वही बिन्दु अमोल !

तोड़ कर वह मुकुर जिसमें रूप करता लास ,
पूछता आधार क्या प्रतिबिम्ब का आवास ?

उर्म्मियों में झूलता राकेश का आभास ,
दूर होकर क्या नहीं है इन्दु के ही पास ?

इन हमारे आँसुओं में बरसते सविलास—
जानते हो क्या नहीं किसके तरल उच्छ्वास ?

इस हमारी खोज में इस वेदना में मौन,
जानते हो खोजता है पूर्ति अपनी कौन!

यह हमारे अन्त-उपक्रम यह पराजय-जीत,
क्या नहीं रचता तुम्हारी सांस का संगीत?

पूछते फिर किस लिए मेरा पता बेपीर!
हृदय की धड़कन मिली है क्या हृदय को चीर?

गीत

अलि अब सपने की बात—
हो गया है वह मधु का प्रात !

जब मुरली का मृदु पंचम स्वर ,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर ,
कम्पित हो उठता सुख से भर ,
नव लतिका सा गात !

जब उनकी चितवन का निर्झर ,
भर देता मधु मे मानस-सर ,
स्मित से झरती किरणें झरझर
पीते दृगजलजात !

मिलनइंदु बुनता जीवन पर ,
विस्मृति के तारों से चादर ,
विपुल कल्पनाओं का मंथर—
बहता सुरभित वात !

अब नीरव मानसअलि-गुञ्जन ,
कुसुमित मृदु भावों का स्पंदन ,
विरह-वेदना आई है बन—
तम-तुषार की रात !

पहिचान

किसी नक्षत्रलोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदु गात,

नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान!

किसी निर्मम कर का आघात
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ
दूर जो उड़ जाती झङ्कार,

जन्म ही उसे विरह की रात,
सुनावे क्या वह मिलन-प्रभात!

चाह शैशव सा परिचयहीन
पलक-दोलों में पलभर झूल,
कपोलों पर जो ढुल चुपचाप
गया कुम्हला आँखों का फूल,

एक ही आदि अंत की सांस—
कहे वह क्या पिछला इतिहास !

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गूँजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार,

देश का जिसे न निज का भान,
बतावे क्या अपनी पहिचान !

सिन्धु को क्या परिचय दें देव !
बिगड़ते बनते वीचि-विलास;
क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद् प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश !

मुझे क्यों देते हो अभिराम !
थाह पाने का दुस्तर काम ?

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास ;
चुरा लाया जो विश्व-समीर
वही पीड़ा की पहली सांस !

छोड़ क्यों देते बारम्बार ,
मुझे तम से करने अभिसार ?

छिपा है जननी का अस्तित्व
रुदन में शिशु के अर्थविहीन ;
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की ही जड़ता में लीन ;

दृगों में छिपा अश्रु का हार,
सुभग है तेरा ही उपहार !

अलि से

इन आँखों ने देखी न राह कहीं,
इन्हें धो गया नेह का नीर नहीं;
करती मिट जाने की साध कभी,
इन प्राणों को मूक अधीर नहीं;
अलि छोड़ी न जीवन की तरिणी,
उस सागर में जहाँ तीर नहीं!
कभी देखा नहीं वह देश जहां,
प्रिय से, कम मादक पीर नहीं!
जिसको मरुभूमि समुद्र हुआ,
उस मेघव्रती की प्रतीति नहीं;
जो हुआ जल दीपकमय उससे,
कभी पूछी निबाह की रीति नहीं
मतवाले चकोर से सीखी कभी,
उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं;
तू अकिञ्चन भिक्षुक है मधु का,
अलि तृप्ति कहां जब प्रीति नहीं!

रश्मि

पथ में नित स्वर्ण-पराग बिछा,
तुझे देख जो फूली समाती नहीं;
पलकों से दलों में घुला मकरन्द,
पिलाती कभी अनखाती नहीं
किरणों में गुँथीं मुक्तावलियां,
पहनाती रही सकुचाती नहीं,
अब भूल गुलाब में पंकज की,
अलि कैसे तुझे सुध आती नहीं!
करते करुणा-घन छांह वहां,
झुलसाता निदाघ सा दाह नहीं;
मिलती शुचि आँसुओं की सरिता,
मृगवारि का सिन्धु अथाह नहीं;
हँसता अनुराग का इन्दु सदा,
छलना की कुहू का निबाह नहीं;
फिरता अलि भूल कहीं भटका,
यह प्रेम के देश की राह नहीं!

उपालम्भ

दिया क्यों जीवन का वरदान ?

इसमें है स्मृतियों की कम्पन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन;
स्वप्न-लोक की परियां इसमें
भूल गईं मुस्कान !

इसमें है झंझा का शैशव,
अनुरञ्जित कलियों का वैभव;
मलयपवन इसमें भर जाता
मृदु लहरों के गान !

इन्द्रधनुष सा घन-अञ्चल में,
तुहिनबिन्दु सा किसलय दल में;
करता है पल पल में देखो
मिटने का अभिमान !

सिकता में अंकित रेखा सा,
वात-विकम्पित दीपशिखा सा;
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान !

निभृत मिलन

सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा छाया सा, आता !
सूने में सस्मित चितवन से जीवन-दीप जला जाता !

छू स्मृतियों के बाल जगाता,
मूक वेदनायें दुलराता,
हृत्तंत्री में स्वर भर जाता,
बन्द दृगों में, चूम सजल सपनों के चित्र बना जाता !

पलकों में भर नवल नेह-कन,
प्राणों में पीड़ा की कसकन,
श्वासों में आशा की कम्पन,
सजनि ! मूक बालक मन को फिर आकुल क्रन्दन सिखलाता !

घन तम में सपने सा आकर,
अलि कुछ करुण स्वरों में गाकर,
किसी अपरिचित देश बुलाकर,
पथ-व्यय के हित अञ्चल में कुछ बांध अश्रु के कन जाता !
सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा छाया सा, आता

दुविधा—

कह दे मां क्या अब देखूँ !

देखूँ खिलतीं कलियां या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ !

देखूँ हिमहीरक हँसते
हिलते नीले कमलों पर,
या मुरझाई पलकों से
झरते आँसू-कण देखूँ !

सौरभ पी पी कर बहता
देखूँ वह मन्द समीरण,
दुख की घूँटें पीतीं या
ठंढी सांसों को देखूँ !

खेलूँ परागमय मधुमय
तेरी वसन्त-छाया में,
या झुलसे संतापों से
प्राणों का पतझर देखूँ !

मकरन्द-पगी केसर पर
जीती मधुपरियाँ ढूँढूं,
या उरपञ्जर में कण को
तरसे जीवनशुक देखूँ !

कलियों की घनजाली में
छिपती देखूँ लतिकायें,
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूँ !

बहलाऊँ नव किसलय के—
झूले में अलिशिशु तेरे,
पाषाणों में मसले या
फूलों से शैशव देखूँ !

तेरे असीम आँगन की
देखूँ जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ !

देखूँ विहगों का कलरव
घुलता जल की कलकल में,
निस्पन्द पड़ी वीणा से
या बिखरे मानस देखूँ!

मृदु रजतरश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा-पंखों में,
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनय देखूँ!

तुझ में अम्लान हँसी है
इसमें अजस्र आँसू-जल;
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रंदन देखूँ!

मैं और तू—

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर
कौतूहल के बाण !

कलियों के मधुप्यालों से जो
करती मदिरा पान,
झाँक, जला देती नीड़ों में
दीपक सी मुस्कान।

लोल तरङ्गों के तालों पर
करतीं बेसुध लास,
फैलाती तम के रहस्य पर
आलिङ्गन का पाश।

ओस-धुले पथ में छिप तेरा
जब आता आह्वान,
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में
होती अन्तर्धान।

तुम अनन्त जलराशि उर्म्मि मैं
चंचल सी अवदात,
अनिल-निपीड़ित जा गिरती जो
कूलों पर अज्ञात!

हिमशीतल अधरों से छूकर
तप्त कणों की प्यास,
बिखराती मंजुल मोती से
बुद्बुद् में उल्लास।

देख तुम्हें निस्तब्ध निशा में
करते अनुसन्धान,
श्रांत तुम्हीं में सो जाते जा
जिसके बालक प्राण।

तुम परिचित ऋतुराज मूक मैं
मधुश्री कोमलगात,
अभिमंत्रित कर जिसे सुलाती
आ तुषार की रात।

पीत पल्लवों में सुन तेरी
पदध्वनि उठती जाग,
फूट फूट पड़ता किसलय मिस
चिरसंचित अनुराग।

मुखरित कर देता मानसपिक
तेरा चितवनप्रात;
छू मादक निश्वास पुलक—
उठते रोओं से पात।

फूलों में मधु से लिखती जो
मधुघड़ियों के नाम,
भर देती प्रभात का अञ्चल
सौरभ से बिन दाम।

'मधु जाता अलि' जब कह जाती
आ संतप्त बयार,
मिल तुझमें उड़ जाता जिसका
जागृति का संसार।

स्वर लहरी मैं मधुर स्वप्न की
तुम निद्रा के तार,
जिसमें होता इस जीवन का
उपक्रम उपसंहार!

पलकों से पलकों पर उड़कर
तितली सी अम्लान,
निद्रित जग पर बुन देती जो
लय का एक वितान।

मानसदोलों में सोती शिशु
इच्छायें अनजान,
उन्हें उड़ा देती नभ में दे
द्रुत पंखों का दान।

सुखदुख की मरकत-प्याली से
मधु-अतीत कर पान,
मादकता की आभा से छा
लेती तम के प्राण।

जिसकी साँसें छू हो जाता
छाया जग वपुमान,
शून्य निशा में भटके फिरते
सुधि के मधुर विहान।

इन्द्रधनुष के रङ्गों से भर
धुँधले चित्र अपार,
देती रहती चिर रहस्यमय
भावों को आकार।

जब अपना संगीत सुलाते
थक वीणा के तार,
घुल जाता उसका प्रभात के
कुहरे सा संसार।

तुम असीम विस्तार ज्योति के
मैं तारक सुकुमार,
तेरी रेखारूपहीनता
है जिसमें साकार!

फूलों पर नीरव रजनी के
शून्य पलों के भार,
पानी करते रहते जिसके
मोती के उपहार।

जब समीर-यानों पर उड़ते
मेघों के लघु बाल,
उनके पथ पर जो बुन देता
मृदु आभा के जाल।

जो रहता तम के मानस से
ज्यों पीड़ा का दाग़,
आलोकित करता दीपक सा
अन्तर्हित अनुराग।

रश्मि

जब प्रभात में मिट जाता
छाया का कारागार,
मिल दिन में असीम हो जाता
जिसका लघु आकार।

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश;
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित्‌विलास।

मुझे बाँधने आते हो लघु
सीमा में चुपचाप,
कर पाओगे भिन्न कभी क्या
ज्वाला से उत्ताप?

उनसे—

विहग-शावक से जिस दिन मूक,
पड़े थे स्वप्ननीड़ में प्राण;
अपरिचित थी विस्मृति की रात,
नहीं देखा था स्वर्णविहान।

रश्मि बन तुम आए चुपचाप,
सिखाने अपने मधुमय गान;
अचानक दीं वे पलकें खोल,
हृदय में वेध व्यथा का बाण—
हुए फिर पल में अन्तर्धान!

रंग रही थी सपनों के चित्र,
हृदय कलिका मधु से सुकुमार;
अनिल बन सौ सौ बार दुलार,
तुम्हीं ने खुलवाये उर-द्वार।

—और फिर रहे न एक निमेष,
लुटा चुपके से सौरभ भार;
रह गई पथ में बिछ कर दीन;
दृगों की अश्रुभरी मनुहार—
मूक प्राणों की विफल पुकार!

विश्ववीणा में कब से मूक,
पड़ा था मेरा जीवन-तार;
न मुखरित कर पाईं झकझोर—
थक गईं सौ सौ मलयबयार।

तुम्हीं रचते अभिनव सङ्गीत,
कभी मेरे गायक इस पार;
तुम्हीं ने कर निर्मम आघात
छेड़ दी यह बेसुर झङ्कार—
और उलझा डाले सब तार!

रहस्य—

न थे जब परिवर्तन दिनरात,
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात;
व्याप्त क्या सूने में सब ओर,
एक कम्पन थी एक हिलोर?

न जिसमें स्पन्दन था न विकार,
न जिसका आदि न उपसंहार!
सृष्टि के आदि आदि में मौन,
अकेला सोता था वह कौन?

स्वर्ण-लूता सी कब सुकुमार,
हुई उसमें इच्छा साकार?
उगल जिसने तिनरंगे तार,
बुन लिया अपना ही संसार!

रश्मि

बदलता इन्द्रधनुष सा रंग,
सदा वह रहा नियति के संग;
नहीं उसको विराम विश्राम,
एक बनने मिटने का काम!

सिन्धु को जैसे तप्त उसांस,
दिखा नभ में लहरों सा लास,
घात प्रतिघातों की खा चोट,
अश्रु बन फिर आ जाती लौट!

बुलबुले मृदु उर के से भाव,
रश्मियों से कर कर अपनाव,
यथा हो जाते जलमयप्राण—
उसी में आदि वही अवसान!

धरा की जड़ता उर्वर बन,
प्रकट करती अपार जीवन;
उसी में मिलते वे द्रुततर,
सींचने क्या नवीन अंकुर?

मृत्यु का प्रस्तर सा उर चीर,
प्रवाहित होता जीवननीर;
चेतना से जड़ का बन्धन,
यही संसृति की हृत्कम्पन!

विविध रंगों के मुकुर संवार,
जड़ा जिसने यह कारागार,
बना क्या बन्दी वही अपार,
अखिल प्रतिबिम्बों का आधार?

वक्ष पर जिसके जल उडुगण,
बुझा देते असंख्य जीवन;
कनक औ' नीलम-यानों पर,
दौड़ते जिस पर निशि-वासर,

पिघल गिरि से विशाल बादल,
न कर सकते जिसको चंचल;
तड़ित् की ज्वाला घन-गर्जन,
जगा पाते न एक कम्पन;

उसी नभ सा क्या वह अविकार–
और परिवर्तन का आधार?
पुलक से उठ जिसमें सुकुमार,
लीन होते असंख्य संसार!

स्मृति

कहीं से, आई हूँ कुछ भूल !

कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये लेता
विस्मृतिसरिता के कूल ?

किसी अश्रुमय घन का हूँ कन,
टूटी स्वरलहरी की कम्पन;
या ठुकराया गिरा धूलि में
हूँ मैं नभ का फूल !

दुख का युग हूँ या सुख का पल,
करुणा का घन या मरु निर्जल,
जीवन क्या है मिला कहाँ
सुधि भूली आज समूल !

प्याले में मधु है या आसव,
बेहोशी है या जागृति नव,
बिन जाने पीना पड़ता है
ऐसा विधि प्रतिकूल !

उलझन

अलि कैसे उनको पाऊँ ?

वे आँसू बनकर मेरे ,
इस कारण ढुल ढुल जाते ,
इन पलकों के बन्धन में ,
मैं बाँध बाँध पछताऊँ ।

मेघों में विद्युत सी छवि ,
उनकी बनकर मिट जाती ,
आँखों की चित्रपटी में ,
जिसमें मैं आँक न पाऊँ ।

वे आभा बन खो जाते ,
शशिकिरणों की उलझन में ,
जिसमें उनको कण कण में ,
ढूँढूँ पहिचान न पाऊँ ।

सोते सागर की धड़कन-
-बन, लहरों की थपकी से ;
अपनी यह करुण कहानी ,
जिसमें उनको न सुनाऊँ ।

वे तारकबालाओं की ,
अपलक चितवन बन आते ;
जिसमें उनकी छाया भी ,
मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ ।

वे चुपके से मानस में ,
आ छिपते उच्छ्वासें बन ;
जिसमें उनको साँसों में ,
देखूँ पर रोक न पाऊँ ।

वे स्मृति बनकर मानस में ,
खटका करते हैं निशिदिन ;
उनकी इस निष्ठुरता को ,
जिसमें मैं भूल न जाऊँ ।

प्रश्न—

अश्रु ने सीमित कणों में बांध ली,
क्या नहीं घन सी तिमिर सी वेदना ?
क्षुद्र तारों से पृथक संसार में,
क्या कहीं अस्तित्व है झंकार का !

यह क्षितिज को चूमने वाला जलधि,
क्या नहीं नादान लहरों से बना ?
क्या नहीं लघु वारि-बूँदों में छिपी,
वारिदों की गहनता गम्भीरता ?

विश्व में वह कौन सीमाहीन है ?
हो न जिसका खोज सीमा में मिला !
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो ?

विनिमय—

छिपाये थी कुहरे सी नींद
काल का सीमा का विस्तार;
एकता में अपनी अनजान,
समाया था सारा संसार।

मुझे उसकी है धुँधली याद,
बैठ जिस सूनेपन के कूल,
मुझे तुमने दी जीवनबीन,
प्रेम-शतदल का मैं ने फूल।

उसी का मधु से सिक्त पराग,
और पहला वह सौरभ-भार;
तुम्हारे छूते ही चुपचाप,
हो गया था जग में साकार।

—और तारों पर उंगली फेर,
छेड़ दी जो मैं ने झङ्कार,
विश्व-प्रतिमा में उसने देव!
कर दिया जीवन का संचार।

होगया मधु से सिन्धु अगाध,
रेणु से वसुधा का अवतार;
हुआ सौरभ से नभ वपुमान,
और कम्पन से बही बयार।

उसी में वड़ियां पल अविराम,
पुलक से पाने लगे विकास;
दिवस रजनी तम और प्रकाश,
वन गए उसके श्वासोच्छ्वास।

उसे तुमने सिखलाया हास,
पिन्हाये मैं ने आँसू-हार;
दिया तुमने सुख का साम्राज्य,
वेदना का मैं ने अधिकार!

वही कौतुक—रहस्य का खेल,
वन गया है असीम अज्ञात;
हो गई उसकी स्पन्दन एक,
मुझे अब चकवी की चिर रात!

रश्मि

तुम्हारी चिर परिचित मुस्कान,
भ्रान्त से कर जाती लघु प्राण;
तुम्हें प्रतिपल कण कण में देख,
नहीं अब पाते हैं पहिचान!

कर रहा है जीवन सुकुमार,
उलझनों का निष्फल व्यापार;
पहेली की करते हैं सृष्टि,
आज प्रतिपल साँसों के तार।

विरह का तम हो गया अपार,
मुझे अब वह आदान प्रदान;
बन गया है देखो अभिशाप,
जिसे तुम कहते थे वरदान!

देखो—

तेरी आभा का कण नभ को,
देता अगणित दीपक दान;
दिन को कनकराशि पहनाता,
विधु को चाँदी सा परिधान।

करुणा का लघु बिन्दु युगों से,
भरता छलकाता नव घन;
समा न पाता जग के छोटे,
प्याले में उसका जीवन।

तेरी महिमा की छाया-छवि,
छू होता वारीश अपार;
नील गगन पा लेता घन सा,
तम सा अन्तहीन विस्तार।

सुषमा का कण एक खिलाता,
राशि राशि फूलों के वन;
शत शत झंझावात प्रलय—
बनता पल में भ्रू-सञ्चालन।

सच है कण का पार न पाया,
बन बिगड़े असंख्य संसार;
पर न समझना देव हमारी—
लघुता है जीवन की हार!

× × ×

लघु प्राणों के कोने में
खोई असीम पीड़ा देखो;
आओ हे निस्सीम! आज
इस रजकण की महिमा देखो!

पपीहे के प्रति

जिसको अनुराग सा दान दिया,
उससे कण माँग लजाता नहीं;
अपनापन भूल समाधि लगा,
यह पी का विहाग भुलाता नहीं;
नभ देख पयोधर श्याम घिरा,
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं?
वह कौन सा पी है पपीहा तेरा,
जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं!

उसको अपना करुणा से भरा,
उरसागर क्यों दिखलाता नहीं?
संयोग वियोग की घाटियों में,
नव नेह में बांध झुलाता नहीं;
संताप के संचित आँसुओं से,
नहलाके उसे तू धुलाता नहीं;
अपने तमश्यामल पाहुन को,
पुतली की निशा में सुलाता नहीं!

कभी देख पतङ्ग को जो दुख से
निज, दीपशिखा को रुलाता नहीं;
मिल ले उस मीन से जो जल की,
निठुराई विलाप में गाता नहीं;
कुछ सीख चकोर से जो चुगता
अङ्गार, किसी को सुनाता नहीं;
अब सीख ले मौन का मन्त्र नया,
यह पी पी घनों को सुहाता नहीं।

अन्त—

विश्व-जीवन के उपसंहार !

तू जीवन में छिपा वेणु में ज्यों ज्वाला का वास,
तुझ में मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास,
पतझड़ बन जग में कर जाता
नव वसन्त संचार !

मधु में भीने फूल प्राण में भर मदिरा सी चाह,
देख रहे अविराम तुम्हारे हिम-अधरों की राह,
मुरझाने के मिस देते तुम
नव शैशव उपहार !

कलियों में सुरभित कर अपने मृदु आँसू अवदात,
तेरे मिलन-पंथ में गिन गिन पग रखती है रात,
नव छवि पाने हो जाती मिट
तुझ में एकाकार !

रश्मि

क्षीण शिखा से तम में लिख बीती घड़ियों के नाम,
तेरे पथ में स्वर्णरेणु फैलाता दीप ललाम,
उज्ज्वलतम होता तुझ से ले
मिटने का अधिकार !

घुलनेवाले मेघ अमर जिनकी कण कण में प्यास,
जो स्मृति में है अमिट वही मिटनेवाला मधुमास—
तुझ बिन हो जाता जीवन का
सारा काव्य असार !

इस अनन्तपथ में संसृति की साँसें करतीं लास,
जाती हैं असीम होने मिट कर असीम के पास,
कौन हमें पहुँचाता तुझ बिन
अन्तहीन के पार ?

चिर यौवन पा सुषमा होती प्रतिमा सी अम्लान,
चाह चाह थक थक कर हो जाते प्रस्तर से प्राण,
सपना होता विश्व हासमय
आँसूमय सुकुमार !

मृत्यु से—

प्राणों के अन्तिम पाहुन !

चाँदनी-घुला, अंजन सा, विद्युत् मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीर-पंखों से उड़ जो नभ में घिर आता,
वह वारिद तुम आना बन !

ज्यों श्रान्त पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलकों में धीरे निद्रा का मधु ढुलकाती,
त्यों करना बेसुध जीवन !

अज्ञात लोक से छिप छिप ज्यों उतर रश्मियाँ आतीं,
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलों के उर खुलवातीं,
छिप आना तुम छायातन !

कितनी करुणाओं का मधु कितनी सुषमा की लाली,
पुतली में छान भरी है मैंने जीवन की प्याली,
पी कर लेना शीतल मन !

हिम से जड़ नीला अपना निस्पन्द हृदय ले आना,
मेरा जीवनदीपक धर उसको सस्पन्द बनाना,
हिम होने देना यह मन !

कितने युग बीत गये इन निधियों का करते संचय,
तुम थोड़े से आंसू दे इन सब को कर लेना क्रय,
अब हो व्यापार-विसर्जन !

है अन्तहीन लय यह जग पल पल है मधुमय कम्पन,
तुम इसकी स्वरलहरी में धोना अपने श्रम के कण,
मधु से भरना सूनापन !

पाहुन से आते जाते कितने सुख के दुख के दल,
वे जीवन के क्षण क्षण में भरते असीम कोलाहल,
तुम बन आना नीरव क्षण !

तेरी छाया में दिव को हँसता है गर्वीला जग,
तू एक अतिथि जिसका पथ हैं देख रहे अगणित दृग,
सांसों में घड़ियाँ गिन गिन।

रश्मि

जब—

नींद में सपना बन अज्ञात !
गुदगुदा जाते हो जब प्राण,
ज्ञात होता हँसने का मर्म
तभी तो पाती हूँ यह जान,

प्रथम छूकर किरणों की छाँह
मुस्कुरातीं कलियाँ क्यों प्रात;
समीरण का छूकर चल छोर
लौटते क्यों हँस हँस कर पात !

रश्मि

प्रथम जब भर आतीं चुपचाप
मोतियों से आँखें नादान,
आँकतीं तब आँसू का मोल
तभी तो आ जाता यह ध्यान;

घुमड़ घिर क्यों रोते नवमेघ
रात बरसा जाती क्यों ओस,
पिघल क्यों हिम का उर अवदात
भरा करता सरिता के कोष।

मधुर अपना स्पन्दन का राग
मुझे प्रिय जब पड़ता पहिचान!
ढूँढ़ती तब जग में संगीत
प्रथम होता उर में यह भान;

वीचियों पर गा करुण विहाग
सुनाता किसको पारावार;
पथिक सा भटका फिरता वात
लिए क्यों स्वरलहरी का भार!

हृदय में खिल कलिका सी चाह
दृगों को जब देती मधुदान,
छलक उठता पुलकों से गात
जान पाता तब मन अनजान;

गगन में हँसता देख मयङ्क
उमड़ती क्यों जलराशि अपार
पिघल चलते विधुमणि के प्राण
रश्मियाँ छूते ही सुकुमार ।

देख वारिद की धूमिल छाँह
शिखीशावक क्यों होता भ्रान्त;
शलभकुल नित ज्वाला से खेल
नहीं फिर भी क्यों होता श्रान्त !

क्रय—

चुका पायेगा कैसे बोल !
मेरा निर्धन सा जीवन तेरे वैभव का मोल

अंचल में मधु भर जो लातीं,
मुस्कानों में अश्रु बसातीं,
बिन समझे जग पर लुट जातीं,
उन कलियों को कैसे ले यह फीकी स्मित बेमोल !

लक्ष्यहीन सा जीवन पाते,
घुल औरों की प्यास बुझाते,
अणुमय हो जगमय हो जाते,
जो वारिद उनमें मत मेरा लघु आँसू-कन घोल !

भिक्षुक बन सौरभ ले आता,
कोने कोने में पहुँचाता,
सूने में सङ्गीत बहाता,
जो समीर उससे मत मेरी निष्फल सांसें तोल !

जो अलसाया विश्व सुलाते,
बुन मोती का जाल उढ़ाते,
थकते पर पलकें न लगाते,
क्यों मेरा पहरा देते वे तारक आँखें खोल ?

पाषाणों की शय्या पाता,
उस पर गीले गान बिछाता,
नित गाता, गाता ही जाता,
जो निर्झर उसको देगा क्या मेरा जीवन लोल ?

समाधि से—

बीते वसन्त की चिर समाधि !

जग-शतदल से नव खेल, खेल
कुछ कह रहस्य की करुण बात ,
उड़ गई अश्रु सा तुझे डाल
किसके जीवन से मिलन-रात ?

रहता जिसका अम्लान रङ्ग—
तू मोती है या अश्रु-हार !

रश्मि

किस हृदयकुञ्ज में मन्द मन्द
तू बहती थी बन नेह-धार ?
कर गई शीत की निठुर रात
छू कब तेरा जीवन तुषार ?

पाती न जगा क्यों मधु-बतास
हे हिम के चिर निस्पन्द भार ?

जिस अमर काल का पथ अनंत
धोते रहते आँसू नवीन,
क्या गया वहीं पदचिन्ह छोड़
छिपकर कोई दुःखपथिक दीन ?

जिसकी तुझमें है अमिट रेख
अस्थिर जीवन के करुण काव्य !

कब किसका सुखसागर अथाह
हो गया विरह से व्यथित प्राण,
तू उड़ी जहाँ से बन उसाँस
फिर हुई मेघ सी मूर्त्तिमान !

कर गया तुझे पाषाण कौन
दे चिर जीवन का निठुर शाप ?

किसने जाता मधुदिवस जान
ली छीन छाँह उसकी अधीर ?
रच दी उसको यह धवल सौध
ले साधों की रज नयन-नीर ;

जिसका न अन्त जिसमें न प्राण
हे सुधि के बन्दीगृह अजान !

वे दृग जिनके नव नेहदीप
बुझकर न हुए निष्प्रभ मलीन ;
वह उर जिसका अनुरागकञ्ज
मुँदकर न हुआ मधुहीन दीन ;

वह सुषमा का चिरनीड़ गात
कैसे तू रख पाती सँभाल !

प्रिय के मानस में हो विलीन
फिर धड़क उठे जो मूक प्राण ;
जिसने स्मृतियों में हो सजीव
देखा नवजीवन का विहान ;

वह जिसको पतझर थी वसंत
क्या तेरा पाहुन है समाधि ?

दिन बरसा अपनी स्वर्णरेणु
मैली करता जिसकी न सेज ;
चौंका पाती जिसके न स्वप्न
निशि मोती के उपहार भेज ;

क्या उसकी हैं निद्रा अनन्त
जिसकी प्रहरी तू मूकप्राण ?

क्यों ?

सजनि तेरे दृग बाल !
चकित से विस्मित से दृग बाल—

आज खोये से आते लौट,
कहाँ अपनी चञ्चलता हार ?
झुकी जातीं पलकें सुकुमार
कौन से नव रहस्य के भार ?

सरल तेरा मृदु हास !
अकारण वह शैशव का हास—

बन गया कब कैसे चुपचाप,
लाजभीनी सी मृदु मुस्कान !
तड़ित् सी जो अधरों की ओट,
झाँक हो जाती अन्तर्धान

सजनि वे पद सुकुमार !
तरङ्गों से द्रुत पद सुकुमार—

सीखते क्यों चंचलगति भूल,
भरे मेघों की धीमी चाल ?
तृषित कन कन को क्यों अलि चूम,
अरुण आभा सी देते ढाल ?

मुकुर से तेरे प्राण,
विश्व की निधि से तेरे प्राण—

छिपाये से फिरते क्यों आज,
किसी मधुमय पीड़ा का न्यास ;
सजल चितवन में क्यों है हास,
अधर में क्यों सस्मित निश्वास ?

कभी—

अश्रुसिक्त रज से किसने
निर्मित कर मोती सी प्याली ;
इन्द्रधनुष के रंगों से
चित्रित कर मुझको दे डाली ?

मैंने मधुर वेदनाओं की
उसमें जो मदिरा ढाली ;
फूटी सी पड़ती है उसकी
फेनिल, विद्रुम सी लाली ।

सुख दुख की बुद्बुद् सी लड़ियाँ
बन बन उसमें मिट जातीं,
बूँद बूँद होकर भरती वह
भर कर छलक छलक जाती।

इस आशा से मैं उस में
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल,
कभी तुम्हारे सस्मित अधरों—
को छू वे होंगे अनमोल!

परिशिष्ट

रश्मि

इसमें प्रभात का एक अपूर्ण सा चित्र है। जब ऊषा की अरुण चितवन पड़ते ही विश्व की सारी निस्तब्धता एक अपूर्व संगीत में परिवर्तित हो जाती है तब मनुष्य का हृदय भी उस संगीत में अपना स्वर मिलाये बिना नहीं रह पाता—उसे भी भूली हुई स्मृति आकर झंकृत कर देती है।

सजल=आर्द्र, ओस से भीगे हुए। कनकरश्मियां=सोने जैसी, सुनहली किरणें (जो प्रातःकाल सुनहली लहरों के समान लगती हैं)। तमसिन्धु=अन्धकार का समुद्र जो रात में प्रशान्त रहता है किन्तु प्रभात होते ही लहरों जैसी रश्मियाँ जिसे आलोड़ित कर देती हैं। प्रवाल=मूँगा, (लाल क्षितिज रेखा जो मूँगों की राशि से बने हुए तट के समान लगती है)। कुहर-म्लान=कुहरे से मलिन, धुँधली। इंद्रधनुषी=इंद्र धनुष के से रंगोवाला, रंग बिरंगा। हिमकण=ओस के बिंदु। तरल-प्राण=लोल, ढुल जाने वाले। स्वर्णप्रात=सुनहला प्रभात। तिमिरगात=अंधकार सा श्याम शरीर। निशिमूक=रात में नीरव हो जानेवाली। मधुसंगीत=वसंत का राग, संगीत। स्वप्नपङ्ख=स्वप्न रूपी पङ्ख जिनके द्वारा नींद उड़कर आ जाती है। नींदनिशि =नींद रूपी रात्रि।

सुधि

कभी कभी स्मृति का आना भी वसंत के आगमन से कम महत्व नहीं रखता। शुष्क हृदय में भूले हुए स्नेह की स्मृतियां, निष्ठुर हृदय में भूले हुए दुःख की स्मृतियाँ सभी जीवन को सरस और उर्वर बनाने में समर्थ हैं। सुधि शीर्षक रचना में भी इसी भाव की छाया है।

सुधिवसंत = स्मृति का वसंत जो जीवन को नवीन सुषमा से, सुख दुःख से भर देता है। सुमनतीर = फूलसा कोमल, मधुमय बाण। रजत-ओस = चांदी सी, रुपहली ओस, आँसू। पुलकजाल = रोमोद्गम, रोमाञ्च। हिमदुराव = हिमसा, तुषार सा छिपाव, हृदय में छुपा हुआ, भूला हुआ रहस्य जो सुधि आने पर उसी प्रकार बह निकलता है जिस प्रकार वसंत के आने पर शिशिर में जमा तुषार।

?

शीर्षक की विचित्रता का कारण रचना का प्रश्नों की शृङ्खला होना है। शून्य में पहले किस पूर्ण ने अपने एकाकीपन का अनुभव करके विश्व की रचना कर डाली? इस पर वह इतने सुन्दर रङ्ग क्यों चढ़ाता और मिटाता रहता है? इसका सारा सौंदर्य क्षणभंगुर क्यों है? यह सब प्रश्न कभी कभी मनुष्य के हृदय में अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु इनका उत्तर किसे मिला है यह कहना कठिन है।

शून्यता = सूनापन, निस्तब्धता। स्वप्निल घन = स्वपनों से भरे हुए मेघ, स्वप्नमय अनुभूतियाँ जो सूने आकाश में जल से भरे मेघों के समान मनुष्य की निद्रावस्था की शून्यता में अपने आप उत्पन्न होती और मिटती रहती हैं।

पूर्णता = पूर्ण विकसित अवस्था, विकास की सीमा। सूनेपन = एकाकीपन। संगम = सम्मिलन, जहाँ काल से सीमा का संयोग होता है। अवगुण्ठन = आवरण, घूँघट जिससे वास्तविक रूप छिप जाता है। चित्राधार = चित्रपट जिस पर कितने ही रंग चढ़ाये और मिटाये जाते हैं। आँसू अवदात = उज्ज्वल ओस के बिन्दु।

विफल सपनों के हार = वे सुख स्वप्न जो सफल नहीं होते और आँसुओं में परिवर्तित हो जाते हैं, ओस के बिंदु। रजत प्याला = रुपहला, चाँदनीनिर्म्मित पात्र। स्वर्ण पराग = सुनहली रश्मियाँ जो फूलों की सुनहली रेणु के समान झड़ती हुई जान पड़ती हैं। सृजन विनाश = बनाना बिगाड़ना।

परिशिष्ट

श्वासोच्छ्वास=स्पन्दन, जीवन। व्याथासिक्त=वेदना से आर्द्र, एकाकीपन के दुःख से भरी हुई।

गीत

हमारा जीवन एक वीणा के समान है जिससे सुमधुर संगीत की सृष्टि करना वादक के हाथ में है। यह अज्ञात बजाने वाला हमारी अनजान में कितनी ही बार आकर इस वीणा से कभी बेसुरी और कभी मधुर झङ्कार बहा जाता है जो कभी विश्वसंगीत में मिलकर हमें उससे एक कर देती है और कभी वेसुरी होकर उससे अलग।

तारों को=जीवनतन्त्री के तारों को जिनसे सुमधुर संगीत की भी सृष्टि हो सकती है और बेसुरी झङ्कार की भी। रागों=इच्छाओं, स्नेह। विराग का पंचम स्वर—असीम उदासीनता। लय=विश्वसंगीत की लय। चिर सुख चिरदुख—अनन्त सुख और असीम वेदना।

दुःख

जगमगाते हुए सुखों की तुलना में हमारे दुःख मलिन से जान पड़ते हैं परन्तु उनकी श्यामता पानी के भरे हुए नव जीवन बरसाने वाले मेघों की श्यामता के समान है। उनमें विश्वजीवन में व्यक्तिगत जीवन को मिला देने की असीम क्षमता होती है।

रजत रश्मियों की=रुपहली चन्द्रमा की किरणों की, हमारे चमकीले सुखों की (छाया में)। धूमिल घन=श्याम, धुयें के रंग वाला किन्तु सजल। निधियाँ=संवेदना, करुणा। विस्मय से निर्मित—विचित्रताओं से बना हुआ। मूक पथिक=मनुष्य जो अपने विषय में कुछ नहीं जानता। विनिमय =प्रेम और संवेदना का आदान प्रदान। मृग मरीचिका=मृगतृष्णा, वालू का यह मैदान जिसकी चमक में मृग को जल का भ्रम होता है। चिर पथ=सदा रहने वाला, अमिट मार्ग। मधु=वसन्त, सुख के दिन। पतझर= ऋतु विशेष जिसमें वृक्षों के पत्ते झड़ जाते हैं, दुख के दिन।

अतृप्ति

इच्छा में जितना सुख है उतना उसकी पूर्ति में सफलता में नहीं इस सत्य का अनुभव हमें जीवन में कितनी ही बार होता रहता है। तृप्ति वास्तव में इच्छा का अन्त है जो इच्छित वस्तु के प्रति एक प्रकार की उदासीनता उत्पन्न कर देती है।

ध्येय = लक्ष्य। विभूति = राख, भस्म। सित = श्वेत, सफेद। असित = श्याम, काला। मुकुरता (आँखों की) = नेत्र जिनमें बाह्य विश्व उसी प्रकार प्रतिबिम्बित हो जाता है जैसे किसी दर्पण में। पुलिन = तट, किनारा। आलोक तिमिर = प्रकाश और अन्धकार, सुख दुःख।

जीवनदीप

जिस प्रकार दीपक को जलने के लिए कई वस्तुओं के संयोग की अपेक्षा होती है उसी प्रकार जीवन के दीपक को भी। भेद इतना ही है कि हम इसके उपकरणों के विषय में कुछ नहीं जानते; यदि जान जायँ तो समझ सकें कि इसका बुझ जाना इतने आश्चर्य्य का कारण नहीं है जितना जलना।

उपकरण = उपादान जिससे दीपक का (मानव का) निर्माण होता है। तेल = तैल जिससे दीपक जलता है, आयु। वर्त्ति = बत्ती, जीवन। ज्वाला = अग्नि, चेतन। धुँधला भविष्य = आगामी अस्पष्ट जीवन। तम घोर = विस्मृति का गहन अन्धकार।

कौन है ?

जीवन में पग पग पर; सृष्टि के एक एक स्पन्दन में और उसके क्षण क्षण में परिवर्तित होते हुए सौन्दर्य्य में हमें एक अज्ञात शक्ति की उपस्थिति का भान होता है, परन्तु हम नहीं समझ पाते कि वह कौन है और हमसे उसका क्या सम्बंध है। हम उसका आभास मात्र पाते हैं इसी से उसे देखकर अनदेखा कर देते हैं।

परिशिष्ट

आँसुओं से = ओस के बिन्दुओं से। रजतपारावार = चाँदनी, रुपहला ज्योत्स्ना का समुद्र। नींद के उच्छ्वास = नींद के दीर्घ निश्वास, सुला देने वाले समीर के मन्द झोंके।

जीवन

मनुष्य विश्व के असीम सौंदर्य और अनन्त वैभव का प्राण है। असीम आकाश, जलाने वाली अग्नि, शीतल कर देनेवाले जल, सौरभ फैलाने वाली समीर और असंख्य जीवन उत्पन्न करनेवाली धरा के परमाणुओं से उसका निर्माण हुआ है, परन्तु इतना महान होने पर भी उसको मिट जाना पड़ता है, कारण विकास का पथ मृत्यु में होकर गया है। परिवर्तन अलक्ष्य रूप से उसे लक्ष्य की ओर —पूर्णता की ओर खींचता रहता है।

तुहिन से पुलिनों = तुषार से, पाले से ढके हुये तट, शिशिर, जड़-विश्व। मधु दिन = वसन्त, नवजीवन। स्वप्न की प्रतिमा = प्राणहीन स्वप्न, कोई अस्तित्व न होने के कारण जो चित्रमात्र हैं, निस्पन्द जगत। छाया = आभास, अस्तित्वहीन स्वप्नों पर जिस प्रकार मनुष्य के हृदयगत दुःख की छाया पड़कर उन्हें सजीव सा बना देती है और निद्रित को वे सत्य से प्रतीव होने लगते हैं उसी प्रकार जड़ विश्व पर चेतन की छाया पड़कर उसे सजीव और सुख-दुःखमय कर देती है।

स्वप्न = बाह्य जगत जो स्वप्नमात्र है। जाग्रति = चेतन। धूलि का कण = मनुष्य का हृदय जो रज का कण है। बिन्दु = आँसू का बूँद। स्पन्दन = हृदय की धड़कन। मधु-मास = पूर्णविकास, नव-जीवन। दृगों में अश्रु = करुणा, वेदना, जल। हास = सुख, विद्युत्। पावसप्यार = वर्षा ऋतु के समान बरसने वाला स्नेह, जिस प्रकार पावस का सजीला बादल जल से (आँसू से) भरा हुआ और विद्युत की हँसी फैलाता हुआ नन्हीं नन्हीं बूँदों में में बरस पड़ता है उसी प्रकार किसी असीम का सुषमामय प्यार दुःख के अश्रु और सुख की हँसी से अपने आप को सजाकर हमारे प्राणों में बरस पड़ता है।

रश्मि

नील......परमाणु उधार = पञ्चतत्व जिनसे मनुष्य का निर्माण हुआ है। निदाघों के दिन = क्रोध, ताप, ज्वाला। पावसरात = आँसू बरसाने वाली करुणा। हाला का राग = देवताओं की मदिरा की लालिमा, मद। पवि = वज्र, कठोरता। नवनीत = मक्खन, कोमलता। निमिष की गति = पल की क्षणभंगुरता। निर्झर के गीत = झरने की अविच्छिन्न, कभी न रुकने वाली कलकल। ऊर्म्मि = लहरें। वात = समीर। कुहू = अमावस्या। माधव = वैशाख मास, ग्रीष्म। वाड़व = बड़वानल, जल की अग्नि। मधुआसव = मधु सी मधुर मदिरा। मृत्पिण्ड = मिट्टी के ढेले। विधान = नियम। पूर्ति = पूर्णता, सफलता।

आह्वान

जिस प्रकार असीम समुद्र को प्यार करनेवाला परन्तु स्थल के सौंदर्य्य पर मुग्ध हो उसे भूला हुआ नाविक समुद्र का आभास मात्र पाते ही उसके आकर्षण से खिंचकर उसके निकट पहुँच जाता है और दूरदेशों की खोज में में चल देने के लिये आतुर हो उठता है उसी प्रकार मनुष्य का हृदय असीम अन्धकार में, घने मेंघों में, अथाह जल में, एक असीम की छाया मात्र देखकर किसी भूले हुये स्नेह के आकर्षण से खिंचकर, संसार से दूर उड़ जाना चाहता है।

गीला = वर्षा की बूँदों से आर्द्र। नैश तिमिर = रात्रि का अन्धकार। नीलममन्दिर = नीले रङ्ग के मणि विशेष से निर्मित मन्दिर, श्याम-घन। हीरकप्रतिमा = हीरों से निर्मित मूर्ति, हीरक प्रतिमा सी कान्तिमती विद्युत्। इन्दु-मणि = रत्नविशेप जो चन्द्र की किरणों को छूते ही पसीजने लगता है। मकरन्द = मधु। केशकलाप = केशराशि, लहरें सेतु = पुल (तरङ्गों से बना हुआ) पुल।

वे दिन

मनुष्य जब तक अबोध रहता है उसे स्वार्थ की संकुचित सीमा नहीं बाँध पाती। सारी सृष्टि उसे अपनी लगती है और वह सब के साथ एक सुकोमल

बंधन में बंधा रहता है। वह तितलियों के भी साथ खेलता, फूलों के भी साथ हँसता, तारों से भी बातें करता और मेघों के भी साथ रोता है। धीरे-धीरे उसका सम्बन्ध केवल मनुष्यों से रह जाता है। वह भी घटते घटते देश विशेष से समाज विशेष, समाज विशेष से कुटुम्ब विशेष और कुटुम्ब विशेष से व्यक्ति विशेष में सीमित हो जाता है। 'वे दिन' उन दिनों की स्मृतियाँ हैं जब मानवहृदय प्रकृति का एक अङ्ग था, उसका आवश्यक सहचर था।

चित्रित = रङ्गीन, रङ्गबिरंगे। तारे पिघलातीं = करुणा से इतना आर्द्र कर देतीं कि उनसे ओस टपकने लगती थी। गर्जन = वर्षाकाल के मेघों का गरजना। मनबालशिखी = मन रूपी बाल मयूर, मन जो मेघ का गरजना सुनकर मोर की तरह बोल उठता था। मुकुरमानस = दर्पण सा हृदय जिसमें अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखा जा सकता था। सीमाहीन = काल और सीमा के बंधन से रहित असीम।

स्मित का...विनिमय = जब हृदय विश्व के सुख दुख में साथ देता था। करुण घटा = संवेदना जो कण कण को आर्द्र कर देती थी साधें = इच्छायें। अपार वैभव = असीम करुणा। सिकताकण = बालू का कण, सीमित हृदय जो विश्व की तुलना में सिकताकण के समान क्षुद्र है। मर्मर = वायु से हिलते हुए पत्तों की मर्मर ध्वनि। विरक्ति = उदासीनता। सिकता = बालू, व्यक्तिगत सुख। हीरकप्याली = हीरों से निर्म्मित पात्र, जीवन।

आशा

सीमित जीवन का असीम से संयोग होते ही उससे एक ऐसा संगीत प्रवाहित होगा जो सारे जगत को संगीतमय कर देगा यही इन पंक्तियों का सारांश है। जिसे आज हम दुःख का सागर समझते हैं उसीमें तब सुख के असंख्य बुद्बुद् उठने लगेंगे, स्मृतियों की जो रेखाएँ आज धुँधली सी लग रही हैं वे ही इन्द्रधनुष के रङ्गों से रंग जायँगी।

मधुदिन = वसन्तकाल, जब सीमित असीम से मिला हुआ था। नीरव साधें = सोई हुई, भूली हुई इच्छायें। शिशिरनिशा = शीत की रात्रि, विस्मृति का अंधकार। मधुप्रभात = वसन्त का प्रभात, संयोग।

मेरा पता

मानव असीम का ही अंश है। इसके आँसुओं में उसी असीम की करुणा, इसकी इच्छाओं में, स्वप्नों में और प्रयत्नों में उसी की पूर्त्ति और इसका जीवन उसी का स्पन्दन है। जिस प्रकार धड़कन का अस्तित्व हृदय ही में है उसी प्रकार सीमित का अस्तित्व असीम में।

अवसाद = विषाद, करुणा। न्यास = धरोहर। हृदय के तार = एकाकी असीम का नीरव मानस जिसमें अचानक अपने से भिन्न किसी साथी का निर्माण करने की चाह उत्पन्न हो जाती है। स्वप्नपावस-काल = स्वप्न रूपी वर्षाकाल। नींद का नभ = असीम की योगनिद्रा जिसमें जगत को रचने का स्वप्न जीवन को अङ्कित कर देता है जैसे वर्षाकाल आकाश में इन्द्रधनुष को अङ्कित कर देता है। तृतिप्याले = पूर्णता का पात्र। साध = इच्छा। बिन्दु = पूर्ण की इच्छा का बिंदुमात्र।

गीत

मानससर = हृदय रूपी सरोवर। मधुप्रात = वसन्त का प्रभात, संयोग। मन्थर = धीमा, मन्द, मन्द। मिलन इन्दु = संयोग रूपी चंद्र। स्मित से = मुस्कान से। किरणें = आभा। दृगजलजात = नयन रूपी कमल जो उसकी हँसी का वैसे ही पान करते थे जैसे कमल प्रभात की सुनहली किरणों का। मानसअलि गुञ्जन = मन रूपी भ्रमर का गूँजना। नीरव = मूक, शब्दहीन। तम तुषार की रात = अँधेरी शीत की रात।

पहिचान

मनुष्य का परिचय देना एक प्रकार से असम्भव है। वह कहाँ से आता है, कहाँ जाने वाला है, उसके आदि और अंत का क्या कारण है, इन सब प्रश्नों का उत्तर सफलता पूर्वक कौन दे सका है! मनुष्य का जीवन अनन्त काल में एक बुलबुले के समान बनता बिगड़ता रहता है और जिस प्रकार बुलबुला समुद्र का इतिहास और अपने बनने बिगड़ने का कारण नहीं जानता उसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन पर एक विस्मित चितवन डाल कर अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर देता है।

शतदल=कमल, विश्व। ओस की बूँद=जलकण, जीवन। जन्म... रात=उत्पन्न होते ही जिसे वीणा के तारों से दूर उड़ जाना पड़ता है। मिलनप्रभात=वीणा के तारों से क्षणिक संयोग। आँखों का फूल=आँसू। एक ही—साँस=एक ही साँस में जिसके जीवन का आरम्भ और अन्त दोनों हो जाते हैं। वारिदघोष=मेघों का गर्जन।

अलि से

नेह का नीर=आँसू जो स्नेह की मधुर पीड़ा से उत्पन्न होते हैं। मूक अधीर=जो भावावेश के कारण शब्दों में अपनी इच्छा भी प्रकट न कर सके। पीर=पीड़ा, विरह की मधुर वेदना जिसमें मिलन से अधिक मादकता होती है। मेघव्रती=जो मेघ के जल के अतिरिक्त और किसी का जल नहीं पीता, पपीहा। स्वर्णपराग=सोने जैसे सुनहली पुष्परेणु। पलकों से दलों=पलकों जैसी पंखुड़ियों। मुक्तावलियाँ=ओस के मोती जैसे बिन्दु।

उपालम्भ

अपने आप में किसी अभाव का अनुभव कर के हम उस अभाव को दूर करने वाली वस्तु को प्राप्त करने के लिए साधना करते हैं और उसे पाकर अधिक पूर्ण हो जाते हैं, परंतु जीवन एक ऐसा वरदान है जो हमें बिना मांगे ही मिल जाता है और हमें काल और सीमा के बन्धन में बाँध कर संकुचित और अपूर्ण बना डालता है। उसमें वेदना है, स्वप्न हैं और है उस समय की धुँधली स्मृति जब हम असीम थे। उसकी सुकुमारता और सुषमा पर क्षण-भंगुरता की छाया पड़ी हुई है।

स्मृत अतीत की स्मृति, जब सीमित और असीम एक थे। व्यथा=वेदना जो स्मृति के आते ही जाग जाती है। उन्मीलन=जागना।

स्वप्नलोक की परियाँ=इच्छायें जिनका सफल होना स्वप्नों में ही सम्भव है संसार में नहीं।

लहरों के गान=लहरों का निरन्तर कलकल, जीवन का संगीत जो लहरों के समान ही नीरव होना नहीं जानता। सिकता में=बालू में। वात-

विकम्पित = वायु से हिलती हुई। तुहिनबिंदु = ओस का बिंदु। किसलय = कोमल नई पत्तियाँ, कोंपल।

निभृत मिलन

जिस प्रकार मिट्टी के जड़ दीपक का हम अग्नि से संयोग करा कर उसे सजीव और प्रकाशमय कर देते हैं उसी प्रकार कोई चुपचाप आकर जड़ में चेतना डाल कर उसे सजीव और प्रकाशित कर जाता है। फिर वही इसे सुख, दुःख, स्वप्न, स्मृति, हँसी और अश्रु से सजा कर एक अभूतपूर्व सौंदर्य की सृष्टि कर डालता है। जड़ और चेतन, सीमा और असीम का वही मिलन विश्व जीवन का कारण है।

तम में = अन्धकार में, अनजान में, अचेतन जगत में। परिचित सा = पहचाना हुआ सा। सुधि सा = स्मृति सा, जैसे स्मृति अचानक आ जाती है और रोकने से नहीं रुकती। छाया सा = अस्पष्ट। जीवनदीप जला जाता = अचेतन में जीवन का संचार कर जाता।

स्वर = झङ्कार, राग, ध्वनि। सजल = आँसुओं से आर्द्र, भीगे हुए। कसकन = कसक, टीस। पथव्यय = मार्ग में (संसार यात्रा में) व्यय करने के लिए।

दुविधा

मनुष्य जीवन के सारे वैभव क्षणभङ्गुर हैं परन्तु प्रकृति के अनन्त। उसमें अनन्त यौवन, असीम सुषमा और चिर जीवन है। अपने दुखों से घिरा हुआ मानव अपनी निर्धनता देखे या उसका वैभव, अपने जीवन का क्रन्दन सुने या उसका संगीत यह उलझनें सुलझ नहीं पातीं।

चिरयौवन = अनन्त यौवन। हिमहीरक = हिम रूपी हीरक, ओस के बिंदु जो हीरे के कणों के समान चमकते हैं। प्राणों का पतझड़ = सब आशा अभिलाषाओं से रिक्त जीवन। मकरंदपगी = मधु में भीगी हुई अतः मधुर। घनजाली = सघन (कलियों का) जाल। जगमग दीवाली = नक्षत्रालोक, जगमगाता हुआ आकाश। बुझते दीपक = अस्तोन्मुख जीवन।

परिशिष्ट

मैं और तू

सीमित और असीम में वैसा ही सम्बन्ध है जैसा चंद्रमा और उसकी रश्मि में, जो पृथ्वी को छूकर फिर उसी में लौट जाती है, जैसा समुद्र और उसकी लहर में, जो तट को छूकर उसीमें मिल जाती है, जैसा वसंत और उसकी श्री में, जो उसी के साथ आती जाती है, जैसा नींद और स्वप्न में जो उसी में बनता और बिगड़ जाता है, और जैसा आलोक और तारे में है जो रात के जाते ही दिन के प्रकाश में मिल जाता है।

झांक ....नीड़ों में=घोंसलों में, पक्षियों के पत्तों से ढके हुए घोंसलों में झांक कर, प्रवेश कर अपनी दीपक सी आभावाली मुस्कान से उन्हें आलोकित कर देती है। लास=नृत्य। तम=अन्धकार जो अपने भीतर संसार का वास्तविक रूप छिपा लेता है। आह्वान=बुलाहट। अवदात=उज्ज्वल, श्वेत। अनिलनिपीड़ित=वायु से उद्वेलित होकर। हिमशीतल=बर्फ से, तुषार से ठंढे। मधुश्री=वसंत की सुषमा, लक्ष्मी। अभिमंत्रित=मंत्र के द्वारा, शीत की अधिकता से जिसे शीत की रात्रि निस्पन्द कर जाती है। पीतपल्लव=पतझड़ में गिरे हुए पीले पत्ते। किसलय=नई कोपल। संतप्त=दुखित, ग्रीष्म की गर्म हवा। स्वरलहरी......तार=स्वप्न का राग जो नींद की वीणा से उत्पन्न होता है। मानसदोल=हृदय रूपी पालने। मधुअतीत=गतकाल की मधुर स्मृतियाँ। तम=अन्धकार, विस्मृति का तिमिर। छायाजग अस्पष्ट, अव्यक्त इच्छायें। वपुमान=साकार, स्वप्नावस्था में मन की अव्यक्त अभिलाषायें भी साकार हो जाती हैं। शून्यनिशा=विस्मृति की गहन रात्रि। सुविहान=स्मृति का प्रभात। धुँधले चित्र=अस्पष्ट इच्छाओं के चित्र जो मन अंकित करता रहता है। मोती के उपहार=ओसबिन्दु। जिसके=तारक के। तम के मानस में=अन्धकार के हृदय में, विस्मृति के तम में। अन्तर्हित अनुराग=गूढ़, अव्यक्त स्नेह जो तारक में विस्तृत आलोक के लिए और सीमित के हृदय में असीम के लिए होता है।

विहगशावक—पक्षी का बोलने में असमर्थ बच्चा। स्वप्ननीड़ में=स्वप्नों से घिरा हुआ, आच्छादित, जीवन की वास्तविकता देखने में असमर्थ

रश्मि

(विस्मृति के अन्धकार और स्मृति की आलोकरेखा से अपरिचित)। मधु= हृदय के राग से। सौरभ=सुगन्ध, इच्छायें। अश्रुभरी=आँसुओं से आर्द्र, भीगी हुई। मनुहार=मनाना, अनुनय विनय। मलयबयार=मलयपवन, सुख के दिवस।

रहस्य

"१" शीर्षक रचना के समान इसमें भी केवल प्रश्न ही हैं। कैसे और किन उपकरणों से सृष्टि का निर्माण हुआ, किसके हृदय में पहले इसके रचने की इच्छा उत्पन्न हुई, वह इच्छा अपने ही त्रिगुणात्मक तारों से इसकी रचना करके अन्त में इसे उदरस्थ क्यों कर लेती है, एक जीवन के नाश से दूसरे की उत्पत्ति क्यों होती है इत्यादि प्रश्न मनुष्य के लिए कुछ नये नहीं हैं।

स्वर्णलूता सी=सुनहली मकड़ी जैसी। तिन रंगे=तीनरङ्ग के, त्रिगुणात्मक, सत्व रज और तम के तारों से। लास=विलास, नृत्य। अश्रु= जलके बिन्दु जो मेघों के अश्रु हैं। तम उसांस=ऊष्ण निश्वास, वाष्प। नवीन अङ्कुर=नये जीवन के अङ्कुर। प्रस्तर=पाषाण, पत्थर। कनक औ, नीलमयानों पर=स्वर्णनिर्मित, सुनहला रथ जिस पर दिन और नीलमनिर्मित, श्याम रथ जिस पर रात आती जाती है। निशिबासर=रातदिन।

स्मृति

जीवन में हमें कभी अचानक ऐसा लगने लगता है जैसे हम कहीं कुछ भूल आये हैं। उस अज्ञात वस्तु का अभाव हमारी विस्मृति पर अपनी छाया डालकर उसे करुण सा बना देती है क्योंकि अभाव का अनुभव होने पर उसके कारण की विस्मृति असहनीय हो जाती है।

रुकती सी=विषम, अव्यवस्थित। नभ का फूल=तारा, दिव्य लोक की वस्तु। विस्मृतिसरिता=अतीत का विस्मरण जिसमें मनुष्य का जीवन डूबा सा रहता है। प्याला=जीवन रूपी पात्र। आसव=मदिरा, वेसुध कर देने वाला पान।

परिशिष्ट

उलझन

तारकमालाओं की = तारों की। अपलक चितवन = निर्निमेष दृष्टि। उच्छ्वास = दीर्घ निश्वास जो वेदना से भरे हृदय से निकलती है।

प्रश्न

सीमित = छोटे, क्षुद्र। नादान=छोटी छोटी। वारिदों की – मेघों की। सीमाहीन = अनंत जिसको काल और सीमा के बंधन नहीं बांध पाते।

विनिमय

सीमित और असीम की एकता से सृष्टि की लय और उन दोनों के वियोग से सृष्टि का जन्म होता है। जब असीम अपने ही एक अंश को संकुचित सीमा में बांधकर उसे अपने से भिन्न जीवन का उपहार दे डालता है और सीमित उसे अपना प्रियतम समझ उस पर अपना सारा स्नेह उँडेल देता है तब इसके दिए हुए प्रेम से सुषमामय विश्व और उसके दिए हुए जीवन से विश्व में स्पंदन का जन्म होता है। इन पंक्तियों में इसी भाव की अभिव्यक्ति है।

कुहरे सी=कुहासे सी अस्पष्ट, धुँधली जिसमें काल और सीमा सब सो रहे थे, अन्तर्हित थे। एकता = सीमित और असीम का ऐक्य जिसमें सृष्टि का कारण छिपा हुआ था। जीवनबीन=जीवनबीणा जिससे अनेक रागों की सृष्टि सम्भव थी। प्रेमशतदल=प्रेम रूपी कमल जिसके मधु परागादि सृष्टि के उपकरण बन गए। आदान प्रदान = जीवन का पाना और प्रेम का देना।

देखो

दीपकदान = तारों का दान। चंदा सा परिधान = चाँदनी। भ्रू-सञ्चालन = भ्रकुटिविलास। निस्सीम = असीम, अनंत। रजकण = धूलि के अणुओं बना हुआ मानव, सीमित, छोटा।

पपीहे से

कण = जल का बिंदु। विहाग = करुण राग। समाधि लगा = तन्मय

होकर। नवनेह में बाँध=नवीन स्नेह के बंधन में बाँध कर। तमश्यामल=अंधकार के समान श्याम, कालामेघ।

अन्त

सृष्टि में कोई वस्तु नष्ट नहीं हो सकती केवल उसके रूप में परिवर्तन हो सकता है। एक वस्तु विकास की चरम सीमा तक पहुँच कर नवीन रूप में परिवर्तित हो जाती है। अन्त वास्तव में किसी वस्तु के नवजीवन का उपक्रम है विनाश नहीं जिस प्रकार पतझड़ बसन्त का पूर्व रूप है।

उपसंहार=अंत। चरम विकास=विकास की सीमा, पूर्ण विकास। मदिरा सी=मदिरा सी मादक। हिम अधर=पाले के समान शीतल अधर, जिनके छूते ही फूल (फिर कली के रूप में आने के लिये) निर्जीव हो जाते हैं: सुरभित=सुगंधित, कलियों के सौरभ में बसाकर। आँसू अवदात=उज्ज्वल आँसू, ओस के बिन्दु। पग=पल रूपी पग। अमर'''प्यास=विश्व का कण कण जिनके लिए प्यासा रहता है। स्मृति में अमिट=जिसकी स्मृति सदा मनुष्य के हृदय में अंकित रहती है। संसृति=विश्व। सांस=स्पन्दन, जीवन अम्लान=कभी न मलीन होने वाली।

मृत्यु

मृत्यु जीवन का अंतिम अतिथि है। उससे डरने का मनुष्य ने अपना स्वभाव बना लिया है, परन्तु वास्तव में वह भय का कारण नहीं है। जिस प्रकार दिन भर चल कर थका हुआ पथिक अंधकारमयी रात्रि की कामना करता है जिसमें विश्राम करके वह नये उत्साह के साथ नवीन प्रभात में अपने पथ पर अग्रसर हो सके उसी प्रकार लम्बी यात्रा से थके हुए प्राणों को मृत्यु का अभिनन्दन करना चाहिए जो उन्हें विश्राम देकर नवजीवन के प्रभात में लक्ष्यपथ पर अग्रसर होने का उत्साह देती है।

पाहुन=अतिथि। चाँदनी-धुला=चन्द्र की आभा से प्रकाशित। अञ्जन सा=श्याम। भारी=थकी हुई, अलसाई। अज्ञातलोक=अन्तरिक्ष, जिसके विषय में कुछ मालूम नहीं है। छायातन=छाया मात्र ही जिसका

शरीर है। पुतली = आँखों के तारे। हिमसे = शीत से। सस्पन्द = सजीव। निधियाँ = जीवन की अनेक सफल असफल कामनायें सुखदुःख। व्यापार-विसर्जन = जीवन का, जिसमें सुखदुःख का आदान प्रदान होता रहता है। अन्त मधु से = विश्वसंगीत की मधुरता से। सूनापन = मृत्यु की शून्यता। दिव् = स्वर्ग, दिव्यलोक।

जब

मनुष्य अपने हृदय से ही विश्व को समझ सकता है। जब उसे अपनी पीड़ा का अनुभव होता है तब वह विश्व की करुणा का अनुभव कर पाता है, जब वह अपने जीवन का संगीत सुन लेता है तब वह विश्वसंगीत को सुनने में समर्थ हो पाता है और जब उसके हृदय में प्यार छलक उठता है तब वह सारे विश्व को प्रेम में पागल पाता है।

समीरण = वायु, समीर। मोतियों से = आँसुओं से। स्पन्दन = धड़कन जीवन। वीचियों = लहरों। वात = पवन। मधुदान = मादकता का, अश्रु का दान। मयङ्क = चन्द्र, विधु। विधुमणि = मणिविशेष जो चन्द्र की किरणें छूते ही पिघलने लगता है। शिखीशावक = बालमयूर। शलभकुल = पतंगों का समूह।

क्यं

बसाती = सुरभित करती। अणुमय हो = जल के लघु बिन्दुओं में फूट फूट कर। गीले गान = आर्द्र, जल से उत्पन्न हुई कल कल लोल = चंचल, अस्थिर।

समाधि से

तुषार = हिम। मधुबतास = वसन्त की वायु। निस्पन्द = अचल, जीवनरहित। मधुदिवस = वसन्तकाल, सुख के दिन। धवल सौध = श्वेत, उज्ज्वल प्रासाद। साधों की रज = असफल कामनायें। नयन नीर = अश्रु। पतझर = मृत्यु, वसंत = नवजीवन। मूकप्राण = नीरव, निस्तब्ध।

क्यों

तड़ित् सी = विद्युत की रेखा के समान पल भर ठहरने वाली। तृषित